भगवान महावीर और उनका उपदेश
(सचित्र)

विश्व के दार्शनिक मनीषियों ने महावीरकालीन विविध विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन कर घोषित किया है कि जैनधर्म-दर्शन का प्रभाव अरस्तू एवं तरथ्रुस्त आदि की विचारधाराओं पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। **''जिओ और जीने दो''** का नारा घोषित करने वाले तीर्थंकर महावीर द्वारा प्रतिपादित सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहिंसा के प्रतिपादन से ही जैनधर्म-दर्शन की विशेष पहिचान बनीं। यह **भगवान महावीर का सर्वोदयवाद एवं अपरिग्रहवाद ही था, जिसे महात्मा गांधी एवं विनोवा भावे ने अपने जीवन में उतारा** और उन्हें अपना एक शक्तिशाली अस्त्र बनाकर उनके माध्यम से वे न केवल आदर्श महात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुए और जन-जन के लोकप्रिय प्रतिनिधि बने, अपितु उसी के बल पर उन्होंने भारत को स्वतन्त्रता भी प्रदान कराई।

महावीर-वाणी में ग्रंथित जैनधर्म-दर्शन के नैतिक आदर्शों से नोबल-पुरस्कार विजेता विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार **जार्ज बर्नार्ड शॉ** भी प्रभावित हुए, जिन्होंने लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार-देवदास गांधी (महात्मा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र) को कहा था कि—''यदि पुनर्जन्म की अवधारणा यथार्थ है तो मैं मर कर अगले जन्म में किसी जैन-परिवार में ही जन्म लेना चाहूँगा।'' ऐसा प्रभावक महनीय व्यक्तित्व था महति-महावीर का।

बिहार की महत्ता

जगत् में समस्त सांसारिक विकारों पर पूर्णतया विजय प्राप्त करने वाले तथा जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है ऐसे आध्यात्मिक विजेता जिन या जिनेन्द्र कहलाते हैं। धर्मतीर्थ का संवर्द्धन एवं प्रवर्तन करने के कारण ये तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकरों का मार्ग श्रमपूर्वक स्वपुरुषार्थ द्वारा आत्मशोधन का है, अतएव ये **'श्रमण'** कहलाते हैं। सभी बन्धनों (मोह-ग्रन्थियों) को तोड़ने के कारण वे **'निर्ग्रन्थ'** भी कहलाते हैं। उन ऋषभादि

महावीर पर्यन्त चौबीस निर्ग्रन्थ श्रमण तीर्थंकरों या जिनदेवों द्वारा स्वयं अनुभूत, आचरित एवं **''सर्वसत्त्वानां हिताय सर्वसत्त्वानां सुखाय''** (संसार के समस्त प्राणियों के हित व सुख के लिए) उपदिष्ट धर्म व्यवस्था का नाम ही जिनधर्म (जैनधर्म) है। ऐसे जिनधर्म के प्रचारक इस युग के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर ने बिहार की पावन भूमि विदेह की वैशाली राजधानी के समीप 'कुण्डपुर नगर में जन्म लेकर जीवन व जगत् को धन्य किया।

बिहार की माटी बड़ी पावन है। उसने संस्कृति के निर्माताओं को जन्म देकर अपना और सारे भारत का उज्ज्वल इतिहास निर्मित किया है। सांस्कृतिक चेतना को उसने जगाया है। राजनैतिक दृष्टि से भी भारत के शासकीय इतिहास में बिहार का नाम शीर्ष और स्मरणीय रहेगा। बिहार ने ही सर्वप्रथम गणतन्त्र (लोकतन्त्र) को जन्म दिया और राजनीतिक क्रान्ति की। सांस्कृतिक चेतना में जो कुण्ठा, विकृति और जड़ता आ गयी थी, उसे दूरकर उसमें नये प्राणों का संचार करते हुए उसे सर्वजनोपयोगी बनाने का कार्य भी बिहार ने ही किया, जिसका प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। बुद्ध, कपिल बस्ती (उत्तर प्रदेश) में जन्में। पर उनका कार्यक्षेत्र बिहार खासकर वैशाली, राजगृह आदि ही रहा, जहाँ तीर्थंकर महावीर व अन्य धर्मप्रचारकों की धूम थी। महावीर और गौतम इन्द्रभूति तो बिहार की ही देन हैं, जिन्होंने संस्कृति में आयी कुण्ठा एवं जड़ता को दूर किया, उसे सँवारा, निखारा और सर्वोदयी बनाया।

वर्द्धमान का जन्म

आज से 2622 वर्ष पूर्व लोकवन्द्य महावीर ने विश्व के लिए स्पृहणीय भारतवर्ष के अत्यन्त रमणीक पुण्य प्रदेश विदेहदेश (बिहारप्रान्त) के 'कुण्डपुर' नगर में जन्म लिया था। 'कुण्डपुर' विदेह की राजधानी वैशाली (वर्तमान वसाढ़) के निकट बसा हुआ था और उस समय एक सुन्दर एवं स्वतन्त्र गणसत्तात्मक राज्य के रूप में अवस्थित था। इसके शासक सिद्धार्थ नरेश थे, जो लिच्छवी ज्ञातृवंशी थे और बड़े न्याय-नीति-कुशल एवं प्रजावत्सल थे। इनकी शासन-व्यवस्था अहिंसा और गणतंत्र (प्रजातंत्र) के सिद्धान्तों के आधार पर चलती थी। ये उस समय के नौ लच्छवि (वज्जि) गणों में एक थे और उनमें इनका अच्छा सम्मान तथा आदर था। सद्धार्थ भी उन्हें इसी तरह सम्मान देते थे। इसी से लिच्छवी गणों के बारे में उनके पारस्परिक, प्रेम और संगठन को बतलाते हुए बौद्धों के दीघनिकाय-अट्ठकथा आदि प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है कि 'यदि कोई

लच्छवि बीमार होता तो सब लिच्छवि उसे देखने आते, एक के घर उत्सव होता तो उसमें सब सम्मिलित होते, तथा यदि उनके नगर में कोई साधु-सन्त आता तो उसका स्वागत करते थे।' इससे मालूम होता है कि अहिंसा के परम पुजारी नृप सिद्धार्थ के सूक्ष्म अहिंसक आचरण का कितना अधिक प्रभाव था? जो साथी नरेश जैनधर्म के उपासक नहीं थे वे भी सिद्धार्थ की अहिंसा-नीति का समर्थन करते थे और परस्पर भ्रातृत्वपूर्ण समानता का आदर्श उपस्थित करते थे।

सिद्धार्थ के इन्हीं समभाव, प्रेम, संगठन, प्रभावादि गुणों से आकृष्ट होकर वैशाली के (जो विदेह देश की तत्कालीन सुन्दर राजधानी तथा लिच्छवि नरेशों के प्रजातंत्र की प्रवृत्तियों की केन्द्र एवं गौरवपूर्ण नगरी थी) प्रभावशाली नरेश चेटक ने अपनी गुणवती राजकुमारी त्रिशला का विवाह उनके साथ कर दिया था। त्रिशला चेटक की सबसे प्यारी पुत्री थी, इसलिए चेटक उन्हें 'प्रियकारिणी' भी कहा करते थे। त्रिशला अपने शीलादि गुणों से भी युक्त थी।

इसी भाग्यशाली दम्पति-त्रिशला और सिद्धार्थ-को लोकवन्द्य महावीर को जन्म देने का अचिन्त्य सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस दिन महावीर का जन्म हुआ वह चैत सुदी तेरस का पावन दिवस था। वर्द्धमान के जन्म लेते ही सिद्धार्थ और उनके परिवार ने पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में खूब खुशियाँ मनाई। गरीबों को भरपूर धन-धान्य आदि दिया और सबकी मनोकामनाएँ पूरी की। तथा तरह-तरह के गायन-वादित्रादि करवाये। सिद्धार्थ के कुटुम्बी जनों, समशील मित्रनरेशों, रिश्तेदारों और प्रजाजनों ने भी उन्हें बधाइयाँ भेजीं, खुशियाँ मनाई और याचकों को दानादि दिया।

महावीर बाल्यावस्था में ही विशिष्ट ज्ञानवान् थे। बड़ी-से-बड़ी शंका का समाधान कर देते थे। यहाँ तक की उन्हें देख संजय और विजय नामक मुनिराज की शंका का समाधान हो गया। इस अद्भुत प्रतिभा को देख उन्हीं मुनिराजों ने उनका नाम 'सन्मति' रख दिया। तभी से लोगों ने उन्हें सन्मति कहना शुरू कर दिया और इस तरह वर्द्धमान का लोक में एक 'सन्मति' नाम भी प्रसिद्ध हो गया। वह बड़े वीर भी थे। भयंकर आपदाओं से भी नहीं घबड़ाते थे, किन्तु उनका साहसपूर्वक सामना करते थे। अतः उनके साथी उन्हें वीर और अतिवीर भी कहते थें।

वर्द्धमान का वैराग्य

वर्द्धमान इस तरह बाल्यावस्था को अतिक्रान्त कर धीरे-धीरे कुमारावस्था को प्राप्त हुए और कुमारावस्था को भी छोड़कर वे पूरे 30 वर्ष के युवा हो गये। अब उनके माता-पिता ने उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। किंतु महावीर तो महावीर ही थे। उस समय जनसाधारण की जो दुर्दशा थी उसे देखकर उन्हें असह्य पीड़ा हो रही थी। उस समय

की अज्ञानमय स्थिति को देखकर उनकी आत्मा सिहर उठी थी और हृदय दया से भर आया था। अतएव उनके हृदय में पूर्णरूप से वैराग्य समा चुका था। उन्होंने सोचा-'इस समय देश की स्थिति धार्मिक दृष्टि से बड़ी खराब है, धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है। यज्ञों में पशुओं की बलि दी जा रही है और उसे धर्म कहा जा रहा है। जहाँ देखो वहाँ हिंसा का बोल-बाला और भीषणकाण्ड मचा हुआ है। सारी पृथ्वी खून से लथपथ हो रही है।

महावीर इस अज्ञानमय स्थिति को देखकर खिन्न हो उठे, उनकी आत्मा सिहर उठी और हृदय दया-से भर आया। वे सोचने लगे कि 'यदि यह स्थिति कुछ समय और रही तो अहिंसक और आध्यात्मिक ऋषियों की यह पवित्र भारतभूमि नरककुण्ड बन जायगी और मानव दानव हो जायगा। जिस भारतभूमि के मस्तक को ऋषभदेव, राम और अरिष्टनेमि-जैसे अहिंसक महापुरुषों ने ऊँचा किया और अपने कार्यों से उसे पावन, बनाया उसके माथे पर हिंसा का वह भीषण कलंक लगेगा जो धुल न सकेगा। इस हिंसा और जड़ता-को शीघ्र ही दूर करना चाहिए। यद्यपि राजकीय दण्ड-विधान-आदेश से यह बहुत कुछ दूर हो सकती है, पर उसका असर लोगों के शरीर पर ही पड़ेगा- हृदय एवं आत्मा पर नहीं। आत्मा पर असर डालने के लिए तो अन्दर की आवाज-उपदेश ही होना चाहिए और वह उपदेश पूर्ण सफल एवं कल्याणप्रद तभी हो सकता है जब मैं स्वयं पूर्ण अहिंसा की प्रतिष्ठा कर लूँ। इसलिए अब मेरा घर में रहना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। घर में रहकर सुखोपभोग करना और अहिंसा की पूर्ण साधना करना दोनों बातें सम्भव नहीं हैं।' यह सोचकर उन्होंने घर छोड़ने का निश्चय कर लिया।

उनके इस निश्चय को जानकर माता त्रिशला, पिता सिद्धार्थ और सभी प्रियजन अवाक् रह गये, परन्तु उनकी दृढ़ता को देखकर उन्हें संसार के कल्याण के मार्ग से रोकना उचित नहीं समझा और सबने उन्हें उसके लिए अनुमति दे दी। संसार-भीरु सभ्यजनों ने भी उनके इस लोकोत्तर कार्य की प्रशंसा की और गुणानुवाद किया।

महावीर की निर्ग्रन्थ-दीक्षा

राजकुमार महावीर सब तरह के सुखों और राज्य का त्यागकर निर्ग्रन्थ अचेल हो वन-वन में, पहाड़ों-की गुफाओं और वृक्षों की कोटरों में ध्यान लगाकर अहिंसा की साधना करने लगे। काम-क्रोध, राग-द्वेष, मोह-माया, छल-ईर्ष्या आदि आत्मा के अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पाने लगे। वे जो कायक्लेशादि बाह्यतप तपते थे अन्तरंग की ज्ञानादि शक्तियों को विकसित व पुष्ट करने के लिए करते थे। उन पर जो विघ्न बाधाएँ और उपसर्ग आते थे उन्हें वे वीरता के साथ सहते थे। इस प्रकार लगातार बारह वर्ष तक मौन-पूर्वक तपश्चरण करने के पश्चात् उन्होंने कर्म-कलंको को नाशकर अर्हत् अर्थात् 'जीवन्मुक्त' अवस्था प्राप्त की। आत्मा के विकास की सबसे ऊँची अवस्था संसार दशा में यही 'अर्हत्

अवस्था’ है जो लोकपूज्य और लोक के लिए स्पृहणीय है। बौद्धग्रन्थों में इसी को ‘अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध’ कहा है।

उनका उपदेश

इस प्रकार महावीर ने अपने उद्देश्यानुसार आत्मा में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा कर ली, समस्त जीवों पर उनका समभाव हो गया-उनकी दृष्टि में न कोई शत्रु रहा और न कोई मित्र। सर्प-नेवला-सिंह-गाय जैसे जाति-विरोधी जीव भी उनके सान्निध्य में आकर अपने वैर-विरोध कों भूल गये। वातावरण में अपूर्व शान्ति आ गई। महावीर के इस स्वाभाविक आत्मिक प्रभाव से आकृष्ट होकर लोग स्वयमेव उनके पास आने लगे। महावीर ने उचित अवसर और समय देखकर लोगों को अहिंसा का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। **‘अहिंसा परमो धर्मः’** कह कर अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को अधर्म बतलाया। जगह- जगह जाकर विशाल सभाएँ करके उसकी बुराइयाँ बतलाई और अहिंसा के अपरिमित लाभ बतलाये। इस तरह लगातार तीस वर्ष तक उन्होंने अहिंसा का प्रभावशाली प्रचार किया। अन्त में 72 वर्ष की आयु में कार्तिकवदी अमावस्या के प्रातः भगवान् महावीर ने पावापुरी, बिहार से निर्वाण पद प्राप्त किया।

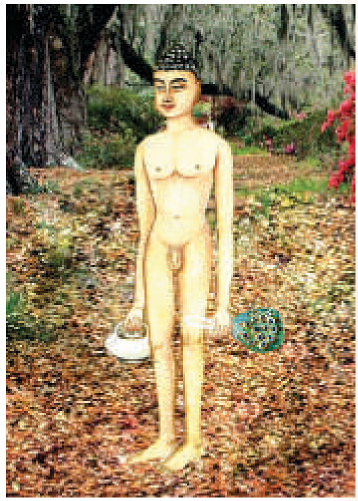

महावीर ने अपने उपदेशों में जिन तत्त्वज्ञानपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं प्रकाशन किया उन पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है :—

1. सर्वज्ञवाद (परमात्मवाद) – जहाँ अन्य धर्मों में जीव को सदैव ईश्वर का दास रहना बतलाया गया है वहाँ जैनधर्म का मन्तव्य है कि प्रत्येक योग्य आत्मा अपने अध्यवसाय एवं प्रयत्नों द्वारा स्वतन्त्र, पूर्ण एवं ईश्वर-सर्वज्ञ परमात्मा बन सकता है। जैसे एक छह वर्ष का विद्यार्थी ‘अ आ इ’ सीखता हुआ एक-एक दर्जे को पास करके एम-ए- और डॉक्टर बन जाता है और छह वर्ष के अल्पज्ञान को सहस्रों गुना विकसित कर लेता है, उसी प्रकार साधारण आत्मा भी दोषों और आवरणों को दूर करता हुआ महात्मा तथा परमात्मा बन जाता है। **कुछ दोषों और आवरणों को दूर करने से महात्मा और सर्व दोषों तथा आवरणों को दूर करने से परमात्मा कहलाता है।** अतएव जैनधर्म में गुणों की अपेक्षा पूर्ण विकसित आत्मा ही परमात्मा है, सर्वज्ञ एवं ईश्वर है- उससे जुदा एक रूप कोई ईश्वर नहीं है।

यथार्थतः गुणों की अपेक्षा जैनधर्म में ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं है। यदि भेद है तो वह यही कि **जीव कर्म-बन्धन युक्त है और ईश्वर कर्म बन्धन मुक्त है।** पर कर्म-बन्धन के दूर हो जाने पर वह भी ईश्वर हो जाता है। इस तरह जैनधर्म में अनन्त ईश्वर हैं। हम व आप भी कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाने पर ईश्वर (सर्वज्ञ) बन सकते हैं। पूजा, उपासनादि जैनधर्म में मुक्त न होने तक ही बतलाई है। उसके बाद वह और ईश्वर सब स्वतन्त्र व समान है और अनन्त गुणों के भण्डार हैं। यही सर्वज्ञवाद अथवा परमात्मवाद है जो सबसे निराला है। त्रिपिटिकों (मज्झिमनिकाय अनु. पृ. 47 आदि) में महावीर (निग्गंठनातपुत्त) को बुद्ध और उनके आनन्द आदि शिष्यों ने 'सर्वज्ञ सर्वदर्शी निरन्तर समस्त ज्ञान दर्शनवाला' कहकर अनेक जगह उल्लेखित किया है।

2. रत्नत्रय धर्म – जीव परमात्मा कैसे बन सकता है, इस बात को भी जैनधर्म में बतलाया गया है। जो जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयधर्म को धारण करता है वह संसार के दुखों से मुक्त परमात्मा हो जाता है।

(I.) **सम्यग्दर्शन**–मूढता और अभिमान रहित होकर यथार्थ (निर्दोष) देव (परमात्मा), यथार्थ शास्त्र और यथार्थ महात्मा (साधु) को मानना और उन पर ही अपना विश्वास करना।

(II.) **सम्यग्ज्ञान**–कम, न ज्यादा, यथार्थ सन्देह और विपर्यय रहित तत्त्व का ज्ञान करना।

(III.) **सम्यक्चारित्र**–हिंसा न करना, झूठ न बोलना, पर-वस्तुको बिना दिये ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना अपरिग्रही होना। गृहस्थ इनका पालन एकदेश और निर्ग्रन्थ साधु पूर्णतः करते हैं।

3. सप्ततत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व (वस्तुभूत पदार्थ) हैं। जो चेतना (जानने-देखने के) गुण से युक्त है वह जीवतत्त्व है। जो चेतनायुक्त नहीं है वह अजीवतत्त्व है। इसके पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच भेद हैं। जिन कारणों से जीव और पुद्गल का संबंध होता है वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय आस्रवतत्त्व हैं। दूध-पानी की तरह जीव और पुद्गल का जो गाढ़ सम्बन्ध है वह बन्धतत्त्व है। अनागत बन्ध का न होना संवरतत्त्व है और संचित पूर्व बन्ध का छूट

जाना निर्जरा है और सम्पूर्ण कर्मबन्धन से रहित हो जाना मोक्ष है। मुमुक्षु और संसारी दोनों के लिए इन तत्त्वों का ज्ञान करना आवश्यक है।

4. अहिंसावाद–'स्वयं जियो और जीनो दो' की शिक्षा भगवान् महावीर ने इस अहिंसावाद द्वारा दी थी। जो परम आत्मा, परमब्रह्म, परमसुखी होना चाहता है उसे अहिंसा की उपासना करनी चाहिये, उसे अपने समान ही सबको देखना चाहिये, अपना अहिंसक आचरण बनाना चाहिये। मनुष्य में जब तक हिंसक वृत्ति रहती है तब तक आत्मगुणों का विकास नहीं हो पाता, वह दुःखी, अशान्त बना रहता है। अहिंसक का जीवमात्र मित्र बन जाता है, सर्व वैर का त्याग करके जातिविरोधी जीव भी उसके आश्रय में आपस में हिलमिल जाते हैं। क्रोध, दम्भ, द्वेष, गर्व, लोभ आदि ये सब हिंसा की वृत्तियाँ हैं। ये सच्चे अहिंसक के पास में नहीं फटक पाती हैं। अहिंसक को कभी भय नहीं होता वह निर्भीकता के साथ उपस्थित परिस्थिति का सामना करता है, कायरता से कभी पलायन नहीं करता। **अहिंसा कायरों का धर्म नहीं है वह तो वीरों का धर्म है।** कायरता का हिंसा के साथ और वीरता का अहिंसा के साथ सम्बन्ध है। **शारीरिक बल का नाम वीरता नहीं, आत्मबल का नाम वीरता है।** जिसका जितना अधिक आत्मबल विकसित होगा वह उतना ही अधिक वीर और अहिंसक होगा। शारीरिक बल कदाचित् ही सफल होता देखा गया है, लेकिन सूखी हड्डियों वाले का भी आत्मबल विजयी और अमोघ रहा है।

(I.) **गृहस्थ-अहिंसा**–गृहस्थ चार तरह की हिंसाओं- आरम्भी, उद्योगी, विरोधी और संकल्पी में- केवल संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है, बाकी की तीन तरह की हिंसाओं का त्यागी वह नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि वह इन तीन तरह की हिंसाओं में असावधान बनकर प्रवृत्त रहता है, नहीं, आत्मरक्षा, जीवन निर्वाह आदि के लिये जितनी अनिवार्य हिंसा होगी वह उसे करेगा, फिर भी वह अपनी प्रवृत्ति हमेशा सावधानी से करेगा। उसका व्यवहार हमेशा नैतिक होगा। यही गृहस्थधर्म है, अन्य क्रियाएँ-आचरण तो इसके पालन के दृष्टिबिन्दु हैं।

(II.) **साधु-अहिंसा**–साधु की अहिंसा सब प्रकार की हिंसाओं के त्याग में से उदित होती है, उसकी अहिंसा में कोई विकल्प नहीं होता। वह अपने जीवन को सुवर्ण के समान निर्मल बनाने के लिए उपद्रवों, उपसर्गों को सहनशीलता के साथ सहन करता है। निन्दा

करने वालों से रूष्ट नहीं होता और स्तुति करने वालों पर प्रसन्न नहीं होता। वह सब पर साम्यवृति रखता है। अपने को पूर्ण सावधान रखता है। तामसी और राजसी वृत्तियों से अपने आपको बचाये रखता है। मार्ग चलेगा तो चार कदम जमीन देखकर चलेगा, जीव-जन्तुओं को बचाता हुआ चलेगा, हित-मित बचन बोलेगा, ज्यादा बकवाद नहीं करेगा। सारांश यह कि जैन साधु अपनी तमाम प्रवृत्ति सावधानी से करता है। यह सब अहिंसा के लिए, अहिंसातत्त्व की उपासना के लिए परमब्रह्म को प्राप्त करने के लिए **''अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमं''** इस समन्तभद्रोक्त तत्त्व को हासिल करने के लिए। इस तरह जैन साधु अपने जीवन को पूर्ण अहिंसामय बनाता हुआ, अहिंसा की साधना करता हुआ, जीवन को अहिंसाजन्य अनुपम शांति प्रदान करता हुआ, विकारी पुद्गल से अपना नाता तोड़ता हुआ, कर्म-बन्धन को काटता हुआ, अहिंसा में ही, परमब्रह्म में ही, शाश्वतानन्द में ही निमग्न हो जाता है, सदा के लिए, अनन्तकाल के लिए। फिर उसे संसार का चक्कर नहीं लगाना पड़ता। वह अजर, अमर, अविनाशी हो जाता है। सिद्ध एवं कृतकृत्य बन जाता है यह सब अहिंसा के द्वारा ही। वीर-शासनकी जड-बुनियाद-आधार और विकास अहिंसा ही है।

5. साम्यवाद – यह अहिंसा का ही अवान्तर सिद्धान्त है, लेकिन इस सिद्धान्त की हमारे जीवन में अहिंसा की ही भाँति अपनाये जाने की आवश्यकता होने से 'अहिंसावाद' के समकक्ष इसकी गणना करना उपयुक्त है, क्योंकि भगवान् महावीर के शासन में सबके साथ साम्यभाव-सद्भावना के साथ व्यवहार करने का उपदेश है, अनुचित राग और द्वेष का त्यागना, दूसरों के साथ अन्याय तथा अत्याचार का बर्ताव नहीं करना, न्यायपूर्वक ही अपनी आजीविका सम्पादित करना, दूसरों के अधिकारों को हड़प नहीं करना, दूसरों की आजीविका पर नुकसान नहीं पहुँचाना, उनको अपने जैसा स्वतन्त्र और सुखी रहने का अधिकारी समझकर उनके साथ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' -यथा-योग्य भाईचारे का व्यवहार करना, उनके उत्कर्ष में सहायक होना, उनका कभी अपकर्ष नहीं सोचना, जीवनोपयोगी सामग्री को स्वयं उचित और आवश्यक रखना और दूसरों को रखने देना। संग्रह की वृत्ति का

परित्याग करना ही 'साम्यवाद' का लक्ष्य है। यदि आज विश्व में वीर प्रभु की यह साम्यवाद की शिक्षा प्रचारित हो जावे तो सारा विश्व सुखी और वातावरण शांतिपूर्ण हो जाये।

6. स्याद्वाद और अनेकान्तवाद–इसको जन्म देने का महान् श्रेय महावीर शासन को ही है। प्रत्येक वस्तु के खर और खोटे की जाँच 'अनेकान्त दृष्टि-स्याद्वाद' की कसौटी पर ही की जा सकती है। चूँकि वस्तु स्वयं अनेकान्तात्मक है उसको वैसा मानने में ही वस्तुतत्त्व की व्यवस्था होती है। स्याद्वाद के प्रभाव से वस्तु के स्वरूप-निर्णय में पूरा-पूरा प्रकाश प्राप्त होता है और सकल दुनिया एवं मिथ्या एकान्तों का अन्त हो जाता है तथा समन्वय का एक महानतम प्रशस्त मार्ग मिल जाता है। स्याद्वाद का प्रयोजन है यथावत् वस्तुतत्त्व का ज्ञान कराना, उसकी ठीक तरह से व्यवस्था करना, सब ओर से देखना और स्याद्वाद का अर्थ है कथंचित्‌वाद, दृष्टिवाद, अपेक्षावाद, सर्वथा एकान्त का त्याग, भिन्न-भिन्न पहलुओं से वस्तुस्वरूप का निरूपण, मुख्य और गौण की दृष्टि से पदार्थ का विचार'। स्याद्वाद में जो 'स्यात्' शब्द है उसका अर्थ ही यह है कि किसी एक अपेक्षा से, सब प्रकार से नहीं, एक दृष्टि से है। जैसे देवदत्तव्यक्ति में अनेक सम्बन्ध विद्यमान हैं, किसी का वह मामा है तो किसी का भानजा, किसी का पिता है तो किसी का पुत्र, इस तरह उसमें कई सम्बन्ध मौजूद हैं। मामा अपने भानजे की अपेक्षा, पिता अपने पुत्र की अपेक्षा, भानजा अपने मामा की अपेक्षा, पुत्र अपने पिता की अपेक्षा से हैं, इस प्रकार देवदत्त में पितृत्व, पुत्रत्व, मातुलत्व, स्वस्त्रीयत्व आदि धर्म निश्चित रूप ही हैं, संदिग्ध नहीं है और वे हर समय विद्यमान हैं। 'पिता' कहे जाने के समय पुत्रपना उनमें से भाग नहीं जाता है, सिर्फ गौण होकर रहता है। स्याद्वाद इस तरह से वस्तुधर्मों की गुत्थियों को सुलझाता है, उनका यथावत् निश्चय कराता है। स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा से ही वस्तु 'सत्' अस्तित्ववान् है और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से ही वस्तु 'असत्' नास्तित्ववान् है आदि सात भंगों द्वारा ग्रहण करने योग्य और छोड़ने योग्य (गौण कर देने योग्य) पदार्थों का स्याद्वाद हाथ में रखे आँवले की तरह स्पष्ट निर्णय करा देता है। संदेह या भ्रम को वह पैदा नहीं करता है बल्कि स्याद्वाद का आश्रय लिये बिना वस्तुतत्त्व का यथातथ्य निर्णय हो ही नहीं सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि स्याद्वाद में न विरोध है और न सन्देह जैसा वह तो वस्तुनिर्णय का, तत्त्वज्ञान का अद्वितीय अमोघ शस्त्र है, सबल साधन है। वस्तु चूँकि अनेक धर्मात्मक है और उसका व्यवस्थापक स्याद्वाद है इसलिये स्याद्वाद को ही अनेकान्तवाद भी कहते हैं, किन्तु 'अनेकान्त' और 'स्याद्वाद' में वाच्य-वाचक सम्बन्ध है।

(I.) **अनेकान्त** – नाना धर्मरूप वस्तु अनेकान्त है।

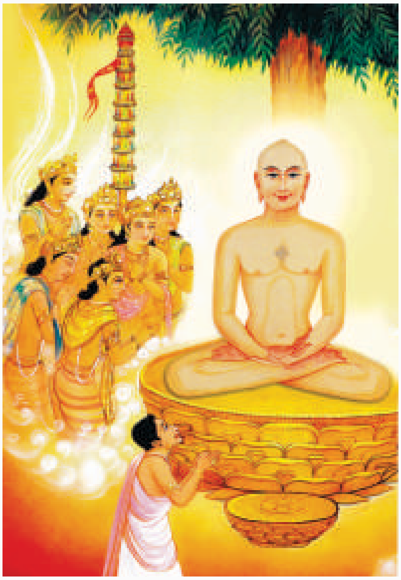

(II.) **स्याद्वाद** – अपेक्षा से नाना धर्मों को कहने वाले वचन प्रकार को स्याद्वाद कहते हैं। अपेक्षावाद, कथंचित्वाद आदि इसीके नाम है।

7. कर्मवाद– कर्म जड़ है, पौद्‌गलिक है, उसका जीव के साथ अनादिकालिक सम्बन्ध है। कर्म की वजह से ही जीव पराधीन है और सुख-दुःख का अनुभव करता है। वह कर्म से अनेक पर्यायों को धारण करके चतुर्गति संसार में घूमता है। कभी ऊँचा बन जाता है तो कभी नीचा, दरिद्र होता है तो कभी अमीर, मूर्ख होता है तो कभी विद्वान्, अन्धा होता है तो कभी बहिरा, लंगड़ा होता है तो कभी बोना, इस तरह शुभाशुभ कर्मों की बदौलत दुनिया के रंगमंच पर नटकी तरह अनेकों भेषों को धारण करता है, अनगिनत पर्यायों में उपजता और मरता है। यह सब कर्म की विडम्बना-कर्म की प्रपंचना है। वीरशासन में कर्म के बहुत ही सुन्दर, सूक्ष्म, विशद विवेचन किया है। जीव कैसे और कब कर्मबंध करता है इन सभी बातों का चिंतन किया गया है। कर्मवाद से हमें शिक्षा मिलती है कि हम स्वयं ऊँचे उठ सकते हैं और स्वयं ही नीचे गिर सकते हैं।

वीर भगवान् ने जीवादि सात तत्त्वों, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग और प्रमाण, नय, निक्षेप आदि उपायतत्त्वों का भी बहुत ही विशद व्याख्यान किया है। नयवाद तो जैनदर्शन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन है। वस्तु के अंशज्ञान को नय कहते हैं। वे नय अनेक हैं। वस्तु के भिन्न-भिन्न अंशों को ग्रहण करने वाले नय ही है। ज्ञाता की हमेशा प्रमाण-दृष्टि नहीं रहती है। कभी उसका वस्तु के किसी खास धर्म को ही जानने का अभिप्राय होता है, उस समय उसकी नय-दृष्टि होती है और इसीलिये ज्ञाता के अभिप्राय को जैनदर्शन में नय माना है। चूँकि वक्ता की वचन-प्रवृत्ति भी क्रमशः होती है, वचनों द्वारा वह एक अंश का ही प्रतिवचन कर सकता है। इसलिये वक्ता के वचन-व्यवहार को भी जैनदर्शन में 'नय' माना है। इस तरह 'महावीर शासन' वैज्ञानिक एवं तात्त्विक शासन है। उसके अहिंसा, स्याद्वाद जैसे विश्वप्रिय सिद्धान्तों से उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता भी अधिक प्रकट होती है।

–आचार्य प्रज्ञसागर

भील बना अहिंसक

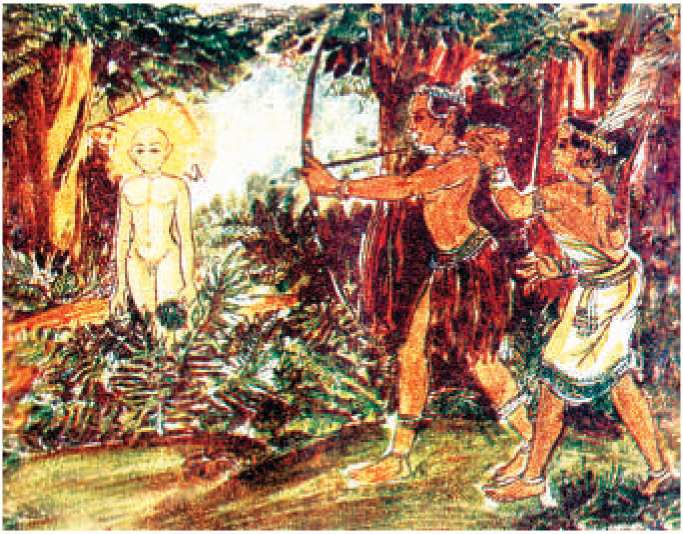

महावीर स्वामी जी का पूर्व भव का जीव पुरुरवा नामक भील सागरसेन मुनिराज को मृग समझकर मारने के लिए उद्यत हुआ तभी उसकी पत्नि कालिका ने रोकते हुये कहा—ये वन के देवता घूम रहे है इन्हें मत मारों। तभी वह पुरुरवा भील भी उसी समय प्रसन्नचित्त होकर उन मुनिराज के पास गया और श्रद्धा के साथ नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शान्त हो गया। मांसादि भक्षण का त्याग कर अहिंसक हो गया।

मृगराज को मिला मोक्षमार्ग

महावीर स्वामी जी का जीव दशभव पूर्व सिंह पर्याय में हिरणी का भक्षण कर रहा था तभी आकाश मार्ग से जाते हुए अजितन्जय एवं अमितगण नामक मुनिराज ने धर्मोपदेश देते हुए।

जन्मभूमि कुण्डपुर वैशाली का भौगोलिक दृश्य

वैशाली अत्यन्त समृद्धिशाली और धन-जन से परिपूर्ण थी। उसमें 7777 प्रासाद, 7777 कूटागार, 7777 आराम और 7777 पुष्करिणियाँ थी। रॉक हिल ने (लाइफ ऑफ बुद्ध, पृ.62) में लिखा है—1 लाख 68 हजार जनसंख्या, 8000 महल मकान, हर मकान में उद्यान और तालाब, 7000 सुवर्ण-गुम्बद, 14000 रजत-गुम्बद, 21000 ताम्र-गुम्बद, इन तीन प्रकार के महलों में क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य कुलों के लोग रहते थे। 7707 संसद सदस्य थे। यहाँ पर प्रत्येक सदस्य अपने को राजा के समान मानता था।

जिनभक्त राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला

भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ एवं माता प्रियकारिणी त्रिशला दोनों उत्तम गुणों से सुशोभित एवं जिनेन्द्र भगवान के परम भक्त प्रतिदिन दर्शन-अर्चन, पूजा-पाठ, स्वाध्याय, संयम, दया-दान आदि षट् कर्त्तव्य का पालन करते हुए।

दया के देवता का अवतरण

माता प्रियकारिणी रत्न दीपकों से प्रकाशित धवल वर्णयुक्त सप्त खण्ड नंद्यावर्त राज प्रसाद में हंसतूलिका राजपर्यंक में मृदु शय्या पर रात्रि के समय सुखद निद्रा का अनुभव करती हुई।

विदेह देश के कुण्डपुर नगर में सप्तखण्ड नंद्यावर्त महल का दृश्य

'सुखारम्भः कुण्डमाभाति
नाम्ना कुण्डपुरं पुरम्'

—हरिवंशपुराण, आचार्य जिनसेन, 2/5,

— **उस विदेह देश में कुण्डपुर नाम** का एक ऐसा सुन्दर नगर था, जो सुख रूपी जल का मानों कुण्ड ही हो।

स्वप्न दर्शन

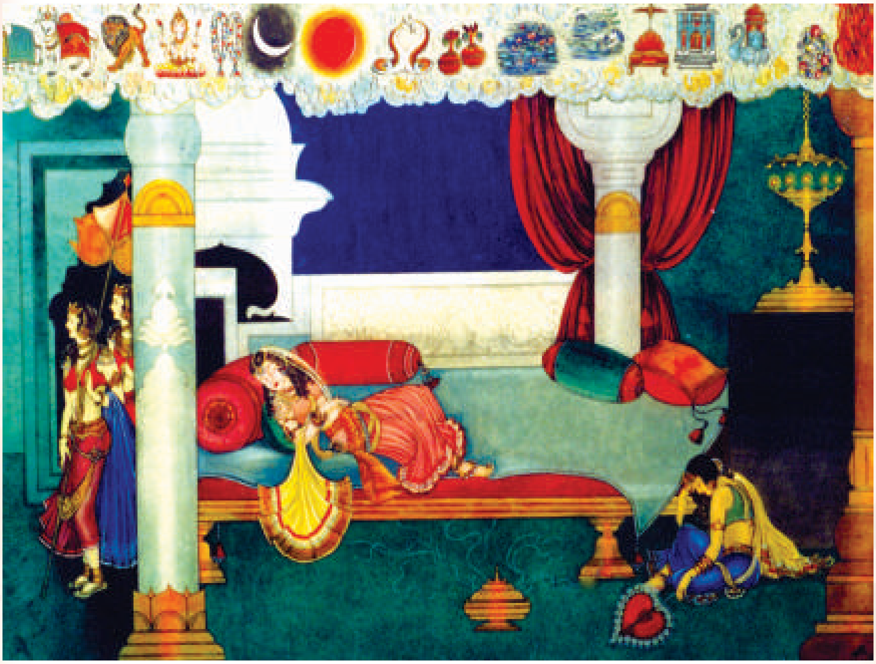

माता प्रियकारिणी त्रिशला ने उत्तमोत्तम सोलह स्वप्न देखकर गर्भ में 'गर्भकल्याणक' के स्वामी श्री महावीर भगवान को धारण किया।

जन्मोत्सव की बेला

जन्म-काल आने पर वे भगवान् तीन लोकों को शान्ति प्रदान करते हुए उस माता से ठीक वैसे ही पैदा हुए जैसे पूर्वदिशा से सूर्य उगता है।

शची इन्द्राणी का परम आनन्द

इन्द्र की आज्ञा पाते ही शची इन्द्राणी ने माता के प्रसूतिगृह में प्रवेश किया और देवकृत माया से माता को सुखनिद्रा में निमग्नकर उसके पास मायामयी दूसरा बालक लिटा कर, जन्माभिषेक के लिए ले जाती हुई।

सौधर्मेन्द्र का आनन्द

जिस प्रकार पूर्वदिशा प्रकाशमान मणियों से सुशोभित उदयांचल के शिखर पर बाल-सूर्य को विराजमान कर देती है उसी प्रकार इन्द्राणी ने पाण्डुकशिला में जन्माभिषेक के लिए जिन-बालक को इन्द्र की हथेली पर विराजमान कर दिया।

सुमेरु–पर्वत की ओर प्रस्थान

सौधर्मेन्द्र ने ऐरावत- गजराज पर आरोहण किया तथा सुमेरु-पर्वत की ओर प्रस्थान करने को अपना हाथ ऊँचा उठाया। बाल-जिनेन्द्र को लेकर देव-देवेन्द्र शीघ्र नभो- मण्डल में बढ़ रहे थे। क्रम से आगे बढ़ते हुए वे इन्द्र निन्यानवे हजार योजन ऊँचे सुमेरु-पर्वत पर पहुँच गए।

प्रथम वीर नामकरण

जिन-बालक के जन्माभिषेक के समय इन्द्र के मन में एक शंका हुई इतने बड़े-बड़े कलशों से प्रभु का अभिषेक कैसे करू। संदेह मुक्त करने हेतु बाल जिनेन्द्र ने बिना श्रम के पैर के अंगूठे के द्वारा मेरु-पर्वत को कम्पित कर दिया। जिससे इन्द्रादि नीचे गिरने लगे। इससे प्रभावित हो इन्द्र ने जिन-बालक को 'वीर' नामकरण किया।

जन्माभिषेक महोत्सव

बाल-जिनेन्द्र के मस्तक पर इन्द्रों द्वारा छोड़ी हुई क्षीरसमुद्र के जल की धारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों किसी पर्वत के शिखर पर मेघों द्वारा छोड़े हुए सफेद झरने ही पड़ रहे हों।

—क्षीर से भरे चाँदी और सोने के कलश देवों द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ में दिए जाकर सुमेरु पर्वत पर पहुँच रहे थे और वे चन्द्र तथा सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे।

वर्द्धमान नामकरण

जिस दिन से वह बाल प्रभु महारानी प्रियकारिणी के गर्भ में आया, उसी दिन से इस घर, नगर और राज्य में धन-धान्य की ऋद्धि समृद्धि बढ़ी। जिसे देख पिता सिद्धार्थ ने बालक का सार्थक नाम 'वर्द्धमान' रखा।

राजा सिद्धार्थ द्वारा महादान

सम्पूर्ण दिव्य-समाज एवं पवित्र वैशाली-कुण्डपुर-समाज के द्वारा मनाए गए जन्मोत्सव के बाद राजा सिद्धार्थ ने सभी नागरिकजनों को यथायोग्य वस्त्र-आभूषण और धन-धान्य देकर उनका यथोचित सम्मान किया।

परिचर्या का प्रबंध

'विदेह-कुण्डपुर' स्थित नंद्यावर्त-राजमहल में इन्द्र ने बाल जिनेन्द्र के योग्य श्रेष्ठ प्रियंवदा नाम की परिचारिका नियुक्त की, जिसकी देख-रेख में बाल-क्रीड़ा करते हुए बाल-जिनेन्द्र वर्द्धमान तीर्थंकर।

सन्मति नामकरण

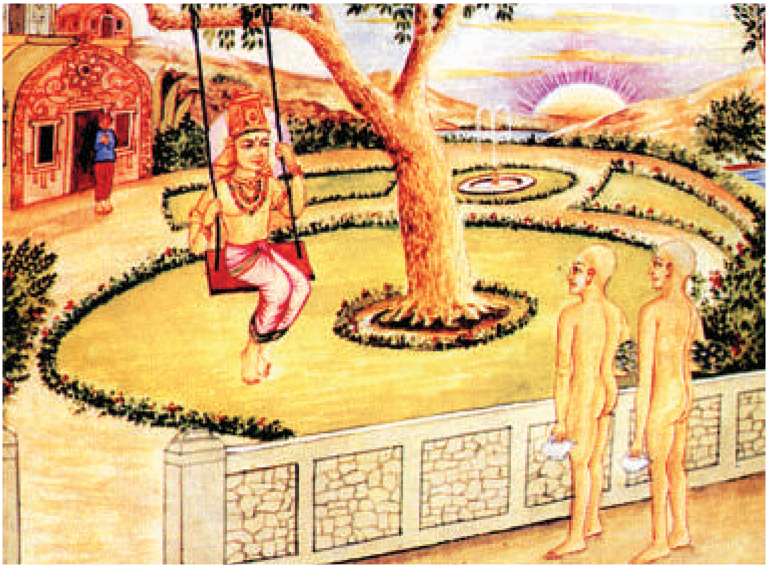

एक दिन चारण ऋद्धिधारी संजय और विजय नामक दो मुनि वीर-जिनेन्द्र के दर्शन मात्र से तत्काल ही पदार्थ के विषय में उत्पन्न शंका से विमुक्त हुये तभी उन्होंने उनका नाम 'सन्मति' रखा।

अतिवीर-नामकरण

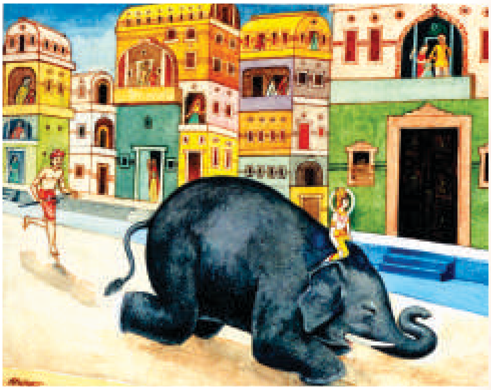

एक दिन कुण्डपुर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर गजशाला से बाहर निकल गया। उसको देखकर कुण्डपुर की जनता भयभीत हो गई और प्राण बचाने के लिए यत्र-तत्र भागने लगी। नगर में भारी कोलाहल मच गया।

उस समय वर्द्धमान अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। तब कुण्डपुर की जनता ने राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता और वीरता की अत्यन्त प्रशंसा की और उन्हें 'अतिवीर' के नाम से पुकारने लगी।

महावीर नामकरण

बालक वर्द्धमान उद्यान में काकधर, पक्षधर और जलधर राजकुमारों के साथ वृक्ष पर चढ़ने-उतरने का खेल, खेल रहे थे। इस समय संगम नाम का देव वीर की वीरता की परीक्षा लेने विशाल विकराल सर्प का रूप धारण कर आया। उसे देख सभी बालक शीघ्र भाग गए किन्तु वद्धर्मान निर्भीक निर्भय होकर सर्प के मस्तक पर क्रीडा करने लगे। वर्द्धमान की निर्भीक वृत्ति को देखकर संगम देव अपना दिव्य रूप प्रकट कर अत्यंत हर्षित हुए। तत्पश्चात् सुवर्ण कलशों के अभिषेक कर उनका नाम 'महावीर' रखा।

पवित्र व्यक्तित्व

कुमार महावीर का प्रेम न तो लक्ष्मी पर था और न ही कीर्ति पर उनकी कोई दृष्टि थी, किन्तु सुलेश्या धारण करने वाले सत्पुरुष के समान उनका प्रेम गुणों पर ही था। उनके लिए कोई अत्यंत अद्भुत वस्तु भी अद्भुत न थी, पर वर्द्धमान के अद्भुत चरित को देखने वालों के लिए अन्य दूसरे अद्भुत भी व्यर्थ ही थे। वे बचपन से ही अत्यंत प्रज्ञा व प्रेक्षा के धनी थे।

अनेकान्तवाद का सिद्धांन्त

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त-स्याद्वाद। विचार पद्धति है 'अनेकान्त एवं स्यात्‌युक्त कथन पद्धति है स्याद्वाद'। हर एक कथन 'अपेक्षाकृत' होता है। हर एक घटना, विचार, वस्तु इत्यादि को अनेकान्त से ही सही जाना जा सकता है। इसे समझने के लिए हाथी और सात अंधे व्यक्तियों का उदाहरण पथदर्शक है।

अनासक्त विषय विरक्त राजकुमार वर्द्धमान

कुमार महावीर का, राजकुमार वर्द्धमान का शील अपूर्व था। वे पवित्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उनका मन अत्यन्त निर्विकार था, निर्दोष था तथा भव्य विचारों से ओत-प्रोत था।

उनके मनोभाव, उनका मृदुल व्यवहार, उनकी प्रतिभा तथा लोकोत्तर-पुण्य का स्मरण कर कुण्डपुर की जनता अपने को उस महानगरी में जनम धारण करने के कारण महान् भाग्यशाली मानती थी। (जीवन्त स्वामी—कांस्य प्रतिमा आठवीं शती ई., बड़ौदा म्यूज़ियम)।

विवाह का प्रस्ताव

अनासक्त विषय विरक्त राजकुमार महावीर कलिंग देश (वर्तमान उड़ीसा) के महाराजा जितशत्रु की सुपुत्री का विवाह वर्द्धमान से हो, ऐसा प्रस्ताव आया था। राज्यकन्या यशोदा को दिखाया भी गया था। लेकिन वर्द्धमान महावीर ने विवाह को नकार दिया।

संसार और संन्यास वर्द्धक गीत और संगीत

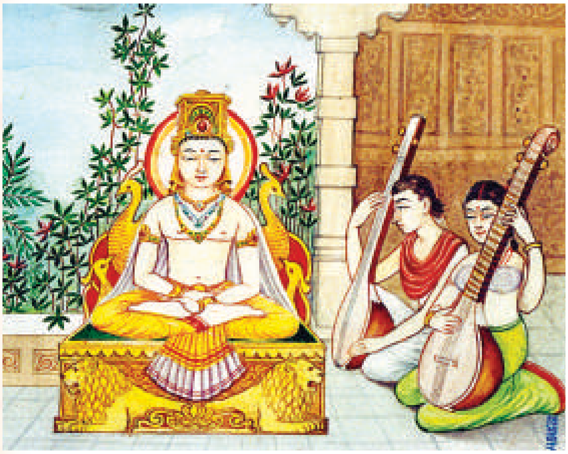

वर्द्धमान को पारिवारिक जीवन में रुचि पैदा करने के लिए विदेह कुण्डपुर नगर के सुप्रसिद्ध गन्धर्वविशारद सोमदत्त और सोमदत्ताश्री द्वारा शृंगार - रस - सिक्त संगीत-गायन भी महावीर की गंभीर मुद्रा में कोई भी परिवर्तन नहीं ला पाया। सोमदत्त थक हार कर 'संसार असार है' इस विषय पर उसने वैराग्य-वर्द्धक-गीत गाना शुरु किया। सोमश्री का वैराग्य-वर्धक भजन महावीर के लिए आत्मसंबल का कारण बना।

वर्द्धमान राजकुमार का वैराग्य एवं संन्यास

वर्द्धमान महावीर को वैराग्य पूर्वभव के जन्मान्तर की स्मृति हो जाने से हुआ। अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करते हुए विचार करते है कि केवल 72 वर्ष की आयु प्राप्त करके तीस वर्ष मैंने बिना संयम स्वयं के खो दिये। अब एक क्षण भी प्रमाद करने के लिए शेष नहीं है। कुमार वर्द्धमान में कुटुम्ब के लोगों तथा नम्री भूत राजाओं से पूछकर सम्पूर्ण परिग्रहों को त्यगकर संयम धारण कर लिया।

आत्मनिरीक्षण

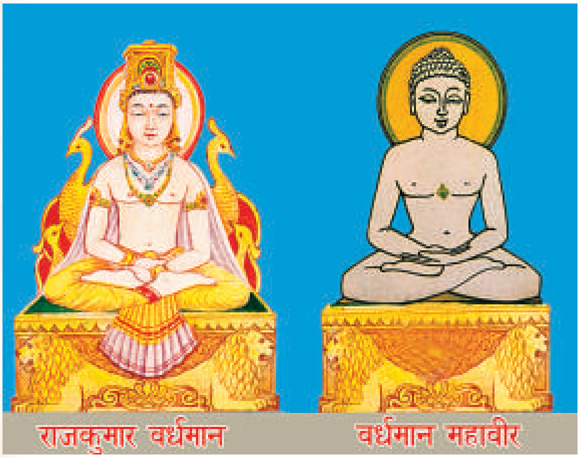

अब वे प्रभु परिग्रह के जाल से मुक्त हो समता रूपी सुधारस का पान करने को उत्कंठित हो गये। वे सोचने लगे—शुद्धात्मा ही लोक में सर्वत्र सुन्दर है।

जो सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों से युक्त अपनी आत्मा को अबद्ध (बन्धरहित), अस्पृष्ट (पर के स्पर्श से रहित), असंयुक्त अन्य के संयोग से रहित एवं शान्तभावस्थित आत्मा में देखता है, जानता है, अनुभव करता है वही आत्मा में सम्पूर्ण जिनशासन को (निजवैभव) को देखता जानता है।

'कूलग्राम' नगर में मंगल-पदार्पण एवं प्रथम आहार

पारणा के दिन महामुनि महावीर स्वामी आहार के लिए वन से निकले और विद्याधरों के नगर के समान सुशोभित कूलग्राम नाम की नगरी में पहुँचे। वहाँ प्रियङ्गु के फूल के समान कान्ति वाले कूल नाम के राजा ने भक्तिभाव से उनके दर्शनकर तीन प्रदक्षिणाएँ दी। नवधाभक्ति पूर्वक उनका पडगाहन कर खीर का आहार कराया।

'**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ बैरत्यागः।**'

भगवान महावीर का प्रभाव

परम पवित्र, दिव्य चरित्र, शान्त परिणाम वाले वे महावीर भगवान जहाँ भी वन में निवास करते थे वहाँ हिरण, गाय, सर्प आदि परस्पर विरोधी जीवों में प्रेम का भाव स्वयमेव जागरण हो जाता था। अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर उनके समीप में आने वाले जाति-विरोधी जीवों में भी बैरभाव दूर हो जाता था।

मौन-मुद्रा पूर्वक पृथ्वी मंडल पर मंगल-विहार

दीक्षा के उपरान्त वे महान् तपस्वी महावीर 12 वर्षों तक जगत् का कल्याण करने के लिए पृथ्वी पर सर्वत्र मंगल विहार करने लगे। वे वाणी का तनिक भी प्रयोग न करते हुए मौन-अवस्था में ही रहते थे। फिर भी उनके आत्मतेज से जीवों का महान् कल्याण होता था। सर्वत्र प्रभु-दर्शन की प्यासी जनता उनके दर्शन मात्र से पुण्य-संचय तथा उज्ज्वल प्रेरणा प्राप्त करती थी।

उपसर्ग से उत्कर्ष

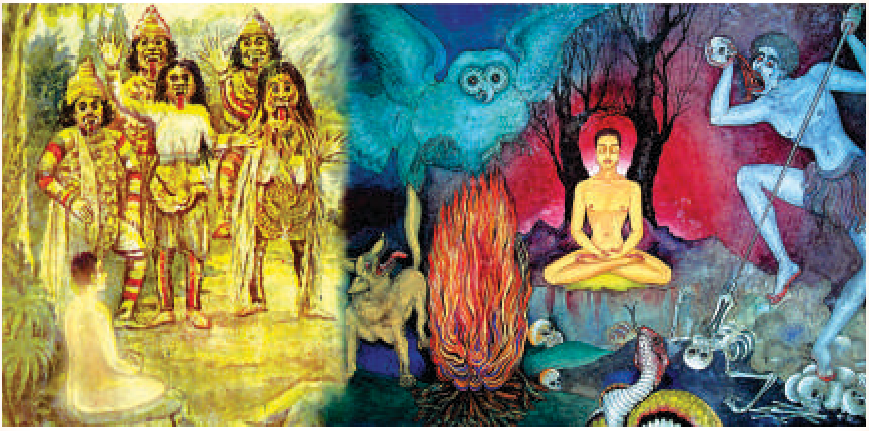

महान् सत्त्वधारी महामुनि महावीर ने अपने ध्यान के लिए उज्जैनी नगरी के अतिमुक्तक नामक श्मशान को उपयुक्त जानकर वहाँ संध्या समय निवास किया और वहीं पर उन्होंने प्रतिमा-योग धारण किया। तभी भव नामक रूद्र (स्थाणुरूद्र) ने समता व संयम की परीक्षा के लिए अपनी नाना विद्याओं के प्रभाव से उनपर घोर उपसर्ग किये, किन्तु उसने भगवान महावीर में अद्‌भुत साहस, शान्ति तथा धैर्य का समुद्र पाया। ऐसी अपूर्व शक्ति दृढ़ता तथा आत्म-सामर्थ्य देखकर रुद्र ने भक्ति से नमस्कार कर कहा आप महातिवीर है, आप सच्चे महावीर है।

वैशाली गणराज्य में मंगल आगमन

निर्ग्रन्थ दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान् महावीर महाव्रत के अनुसार विहार करते हुए तत्कालीन लिच्छवी गणराज्य में गये थे। तब वहाँ के गणप्रमुखों ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

नारी उत्थान एवं आहारदान

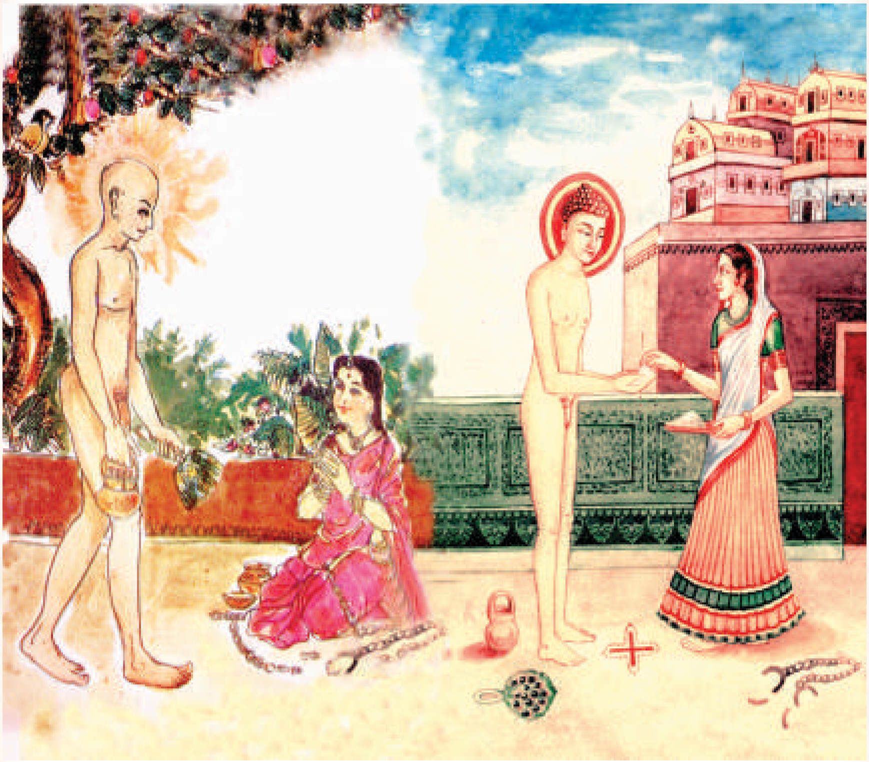

वैशाली के राजा चेटक की सबसे छोटी पुत्री चंदन बाला बहुत सुन्दर एवं मनोज्ञ थी। कर्मोदय के कारण उसे एक विद्याधर उठा ले गया। पत्नी के भय से जंगल में छोड़ दिया। वहाँ भील ने अपने आधीन करने की सोची, पर वनदेवी वहाँ प्रकट हुई और उस भील को धमकाया। उसने लालच के कारण कोशाम्बी नगर के वृषभसेन सेठ के नोकर मित्रवीर को सौप दी। मित्रवीर ने भी धन के लिए उसे सेठ वृषभसेन को सौप दी। सेठ ने उसे पुत्री के समान अच्छे से रखा। जब वह सेठ को पानी पिला रही थी तभी सेठानी ने चन्दना का वह रूप देखा तो शंका से भर आई। उसने क्रोध वश उसके बाल कटवा के हथकड़ी से बांधकर कारागृह में डाल दिया। अपने कर्मों की निंदा करती हुई एक दिन उसी नगरी में महामुनि महावीर का आगमन होता है, उन्हें देखते ही सांकल टूट गई। मिट्टी के पात्र में कोदों का भात भी स्वर्ण पात्र में खीर बन गई। नवधा भक्तिपूर्वक आहार दें जीवन सफल किया, दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

मोह विजय कर आत्मध्यान से केवलज्ञान

सर्व कारणों से सम्पन्न महायोगी महामुनि शुद्धोपयोगी महावीर परिणामों की विशुद्धता को बढ़ाते हुए वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए।

उन्होंने शुक्ल-ध्यान के द्वारा चारों घातिया कर्मों को नष्टकर अनन्त चतुष्टय केवलज्ञान को प्राप्तकर, चौंतीस अतिशयों से सुशोभित होकर, वे महिमा के आलय हो गये।

समवसरण की रचना

जब भगवान महावीर स्वामी को केवलज्ञान हुआ, उसी समय सौधर्मेन्द्र ने ज्ञान कल्याणक सम्बन्धी पूजा की एवं विश्वकल्याणकारी उपदेशों को सर्व साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए कुबेर को एक सुन्दर विशाल सभा मण्डल अर्थात् समवसरण (प्रवचन सभा) बनाने का आदेश दिया। वह समवसरण इन्द्रनील मणियों से बना और चारों ओर से गोलाकार वह समवसरण ऐसा जान पड़ता था मानों तीनों जगत् की लक्ष्मी के मुख को देखने के लिए मंगलरूप एक दर्पण ही हो।

दिव्यध्वनि न खिरने का कारण

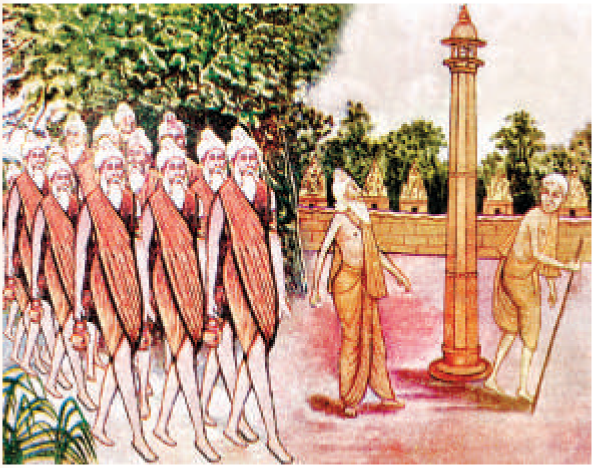

भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद भी जगतकल्याणकारी वाणी सुनने को 66 दिन तक लगातार नहीं मिली। चूँकि भगवान की वाणी को ग्रहण वाले प्रमुख गणधर का अभाव था। इन्द्र ने अपने ज्ञान से गौतम इन्द्रभूति ब्राह्मण को इसके योग्य समझा। इन्द्र ने बड़े ही युक्ति से समवसरण की ओर उन्हें ले आये। समवसरण में मानस्तम्भ के दर्शन मात्र से इन्द्रभूति का ज्ञानमद नष्ट हो गया और उसने अपने मस्तक को झुका लिया। तभी भगवान का दिव्योपदेश भव्य जीवों को प्राप्त हुआ।

गौतम स्वामी का पवित्र कार्य

भगवान की वाणी सुनकर भावश्रुतरूप पर्याय से बुद्धि की परिपक्वता को प्राप्त, ऐसे इन्द्रभूति नामक शिष्य अर्थात् गौतम गणधर द्वारा एक मुहूर्त में बारह-अंग और चौदह-पूर्वों की भावश्रुत की रचना की।

सर्वदेश मंगल विहार एवं धर्मोपदेश

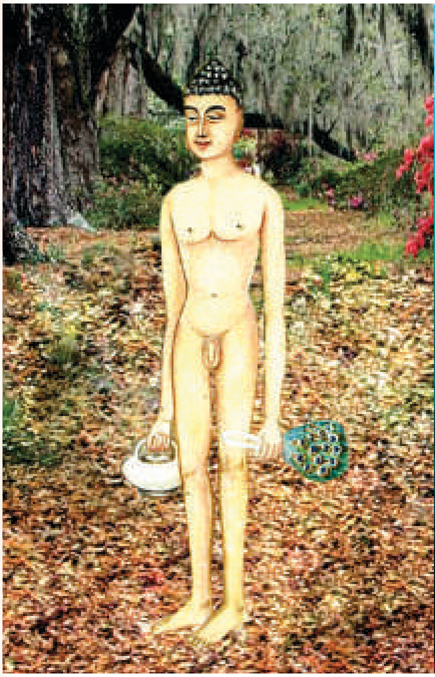

श्री वीर जिनेन्द्र सूर्य के समान पृथ्वी मंडल में अनिच्छापूर्वक मंगल विहार करते हुऐ सर्वोदयी मांगलीक प्रवचनों से 30 वर्षों तक सभी भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते रहे।

तिर्यञ्च को भी तीर्थंकर महावीर के दर्शन

राजगृह नाम के नगर में भगवान् जिनेन्द्र को पूजने के हर्ष में मस्त अपनी सामर्थ्य को नहीं जानने वाला एक मेंढ़क हुआ, जिसने अरिहन्त महावीर भगवान् के चरणों की एक पुष्प द्वारा पूजा करने का महान् प्रभाव, जो भव्य जीव महानुभाव है उन्हें प्रगट करके दिखलाया है। एक मेंढ़क को भी पूजा मात्र के भाव से साक्षात् तीर्थंकर के दर्शन मिले।

पावापुरी में प्रभु का आगमन एवं अंतिम दिव्य देशना

सर्वदेशों में मंगल विहार करते-करते महावीर को लगभग तीस वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इस काल में भव्य-समूह को सम्बोधकर वे पावानगरी पहुँचे और वहाँ के 'मनोहरोद्यान' नामक वन में विराजमान हो गए। यहाँ भगवान की मोक्ष के पूर्व की अन्तिम दिव्य धर्म-देशना हुई। उन्होंने कहा—यदि तुम्हें सच्चा सुख प्राप्त करना है, तो सम्यग्दर्शन को धारण कर सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय धर्म का पालन करो।

पावापुरी पर निर्वाणोत्सव

महाराजा हस्तिपाल की राजधानी के पावापुर पास एक पद्म सरोवर के मध्य में ही ऊँचे भूमि प्रदेश पर कायोत्सर्ग ध्यानवस्था में भगवान महावीर ने समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया।

पावापुरी पर निर्वाणोत्सव

पावापुरी के पद्म सरोवर के मध्य एक शिला पर अकेले खड्गासन से खड़े होकर भगवान महावीर स्वामी ने कर्मों को नष्ट कर मोक्ष पद पाया वहाँ असंख्य देवी-देवताओं, राजा-महाराजा, वज्जिसंघ, लिच्छिवी संघ के गणनायक लोगों सहित सभी ने दीपावली उत्सव मनाया। आज भी उन्हीं की स्मृति में दीपावली का उत्सव सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रतिवर्ष वीर निर्वाण कल्याणक के दिन मनाया जाता है।